भारत में

बोधिवृक्ष कैसे सूखा ?

(भारत में बुद्ध धर्म के ह्रास के कारणों का संक्षिप्त विवरण)



लेखक

श्री सोहन लाल शास्त्री विद्यावाचस्पति बी० ए०

प्रकाशक

सिद्धार्थ साहित्य सदन

७/५४ साउथ पटेल नगर नई दिल्ली-११०००८

मूल्य : ३ रुपये

उपहार

गृहस्थ की जटिल जिम्मेदारियों की गाड़ी खींचने के साथ-साथ गत चालीस वर्षों से भी अधिक समय से समाज सेवा करने में पत्नी के रूप में जिसका मुझे पूर्ण सहयोग मिलता आ रहा है।

जिसकी उत्कट प्ररणा से प्रोत्साहित मेरी लेखनी को कुछ बल मिलता रहा है,

प्रस्तुत पुस्तक के रूप में यह उपहार उसी को।

—लेखक

विवेचन

कुछ बरसों से संसार भर में भगवान् बुद्ध तथा उनके धर्म के प्रति श्रद्धा तथा रुचि का प्रादुर्भाव होता दिखाई पड़ रहा है। यूरोप और अमेरिका में हजारों ऐसी सस्थाएँ स्थापित हो चुकी है जिनमें भगवान् बुद्ध तथा उनके धर्म पर अनुसंधान एवं आचरण करने के लिए सहस्रों गौरांग भिक्षु तथा अन्य साधक व्यस्त हैं। दक्षिण एशिया तो बौद्ध धर्म का परम्परागत अनुयायी है ही, भारत मे भी बौद्ध सस्कृति का पुनर्जागरण होता प्रतीत हो रहा है। आज जब कि संसार भर से मजहबों के बन्धन ढीले हो रहे है और जन साधारण विज्ञान तथा मनोविज्ञान के आलोक से आलोकित होकर पुराने धर्म आडम्बरों के चक्कर से पिंड छुड़ा रहा है। ऐसी परिस्थिति में भगवान् बुद्ध तथा उनके धर्म के लिए जनता में, केवल सामान्य जनता में ही नही बल्कि बौद्धिक विकास की चरम सीमा पर पहुँची यूरोप तथा अमेरिका की जनता में भी अनोखी चाह तथा आकर्षण का दिन पर दिन बढ़ते जाना बड़ी अद्भुत बात है। मज़हबों और धर्मों के जकड़-बन्ध में शताब्दियों से फंसे लोग इस पिंजरे से मुक्त होने के लिए यत्नशील हैं। क्योंकि ऐसे लोगों के विचार में अब धर्मों तथा मजहबों का युग बीत चुका है। विज्ञान ने मानव के मस्तक पटल से घुसे पुराने वहमों को उखाड़ कर फेंक दिया है। उनके मत में मजहब और धर्म भी एक बड़ा भारी वहम था, अतः विज्ञान के दीपक ने इस वहम के अंधकार को मार भगाया है।

ईसाई, मुस्लिम, यहूदी तथा हिन्दू धर्म के रखवाले पादरी, मुल्ला तथा पुरोहितों की धर्म के विषय में मान्यताएँ आज निरर्थक आडम्बर सिद्ध की जा रही हैं। धार्मिक नेताओ को इस युग के वैज्ञानिक तथा तर्कमूल प्रहारों का मुकाबला करना कठिन ही नहीं असम्भव सिद्ध हो रहा है। ऐसी स्थिति मे भगवान् बुद्ध तथा उनके धर्म के लिए जन हृदय में श्रद्धा तथा प्रेम का होना अनोखी सी बात है। यदि हम इस विरोधाभास मयी स्थिति का पूरा अनुशीलन करेंगे तो हमारे सामने वह तथ्य प्रकट हो जायेंगे जो आज के धर्मविहीन वातावरण मे भगवान् बुद्ध तथा उनके धर्म को जनता में आकर्षक तथा प्रिय बना रहे है।

यूरोप तथा अमेरिका की जनता का धर्म विश्वास सदियों से ईसामसीह में रहा है। वह यसूह को ईश्वर का पुत्र या ईश्वरीय आत्मा मानते आ रहे हैं। वह उन्हें कुआँरी माता मरियम से पैदा हुआ मानते रहे हैं। ईसा पर यह धार्मिक विश्वास रखना कि वह खुदा के मात्र बेटे हैं और जन साधारण के लिए सूली पर चढ़े है मुक्ति के लिए एकमात्र साधन हैं। बाइबिल की शिक्षा जिसमें सृष्टि रचना, धरती, नरक, स्वर्ग, ईश्वर, मुक्ति आदि का सविस्तार वर्णन है; आज के वैज्ञानिक युग में सुशिक्षित जनता की तसल्ली नही करा सकती। वैज्ञानिकों ने बाइबिल के उक्त सिद्धांतों से टक्कर लेकर उन्हें निस्सार साबित कर दिया है। इन सिद्धांतों के शताब्दियों से प्रचार होने पर भी न तो व्यक्ति की और न ही समष्टि की शंकाएँ तथा भ्रम दूर हुए है एवं न ही व्यक्ति की और न ही समष्टि की मानसिक शांति हुई है। सारे यूरोप तथा अमेरिका में ईसाई धर्म होने के बावजूद भी प्रत्येक देश तथा जाति का हार्दिक मेल मिलाप नही हो सका, बल्कि एक देश दूसरे देश से शत्रुता बढ़ा रहा है। एक जाति दूसरी जाति को नीचा दिखाने पर तुली हुई है। यसूह मसीह तथा उनका धर्म

यूरोपीय ईसाई जगत में पारस्परिक मानसिक सुख-शांति का उदय नहीं कर पाया। इन कारणों को देखते हुए आज सहस्रों यूरोपीय सरल हृदय मानव किसी नये प्रकाश की खोज मे निकल पड़े दिखाई पड़ते है। ऐसे जिज्ञासु ही आज यूरोप तथा अमेरिका में भगवान् बुद्ध तथा उनके धर्म में दीक्षित हो रहे हैं।

इस सन्मार्ग पर चल कर जहाँ ऐसे धर्म जिज्ञासुओं को मानसिक शांति मिल रही है वहां वह तथागत गौतम बुद्ध के मानव सदेश को भीषण उद्‌जन बमों तथा तथा भयानक युद्धास्त्रों से त्रस्त मानवता का एकमात्र सरक्षक समझते है। वह समझते हैं कि वैज्ञानिक आविष्कारों के साथ यदि भगवान् बुद्ध के शान्ति-दायक उपदेश का सम्पर्क होगा तो मानव तथा मानव की आज तक अर्जित की गई सभ्यता तथा संस्कृति का बचाव हो सकेगा। अकेला विज्ञान मानवता के लिए सुखद न होकर दुख का ही कारण बनता जायेगा।

भारत के स्वतन्त्र होने के पश्चात् भारत को जनता ने भी स्वतंत्रता पूर्वक सोचना समझना आरम्भ कर दिया है। भारतीय स्वतन्त्र विचार का सबसे पहला प्रमाण भारतीय 'सविधान' है। इस संविधान की बुनियाद स्वतंत्रता, भ्रातृत्व, समता तथा न्याय के आधार पर रखी गई है। कहना पड़ेगा कि वेदो की संस्कृति से लेकर गोस्वामी तुलसीदास की संस्कृति तक भारतीय जनता में परस्पर भ्रातृत्व, समता तथा स्वतन्त्रता की घोषणा पहली बार की गई है। भारत मे जातिविहीन समाज बनाने की जो कल्पना भारतीय संविधान का अंग बनी है वह अत्यन्त सराहनीय भावना है। इसी भावना को इस देश से आज से ठीक अढाई हज़ार बरस पूर्व भगवान तथागत ने जन्म दिया था। सवर्णकुलो में उत्पन्न, कालेजो की शिक्षा से सम्पन्न, उदार हृदय हिन्दू नवयुवको को वेदो, स्मृतियों, पुराणो तथा हिन्दू सस्कृति के अन्य उपदेशो से

आज शांति नही मिलती। वह किसी ऐसे संदेश को सुनने के लिए लालायित हो रहे है जो उन्हें संसार के बौद्धिक स्तर पर खड़ा कर सके। आज अगर उसे कहीं कोई आशा की किरण दिखाई पड़ती है तो वह केवल भगवान् बुद्ध के संदेश में ही दिखाई देती है। यही भावना उसे भगवान् बुद्ध तथा उसके धर्म की ओर खीच रही है। वह आज बौद्ध वाङ्मय को पढ़कर गौरव तथा गर्व अनुभव करने लग पड़ा है। उसे आज हिन्दू समाज की रचना पर हर्ष नही वरन् लज्जा अनुभव हो रही है। यद्यपि अभी तक वह सामाजिक क्रांति के लिए तैयार नहीं हो पाया किन्तु वर्तमान हिन्दू समाज, सभ्यता तथा सस्कृति का वह सही मूल्य आंकने लग पड़ा है और उसे भारतीय सामाजिक, सांस्कृतिक तथा दार्शनिक तुलनात्मक अध्ययन में भगवान् बुद्ध अपनी ओर खींचता चला जा रहा है। वह दिन दूर नहीं जब ऐसा भारतीय नवयुवक भगवान् बुद्ध की भांति भारत में सांस्कृतिक तथा सामाजिक क्रांति का अग्रदूत बनेगा।

स्वतन्त्रता के बाद भारत में जहां उच्च वर्ण कहे जाने वाले उदार हृदयों ने भगवान् बुद्ध के प्रति अपनी श्रद्धा तथा अनुराग का कुछ परिचय देना शुरू किया है वहां शताब्दियों से वर्ण व्यवस्था तथा जातपांत के कीचड़ में फसे तथा बिलखते कराहते पददलित तथा पिछड वर्गों ने भी अपनी दयनीय दशा पर सोचना आरम्भ कर दिया है। वह भी इस स्वाधीन भारत में आज़ादी की सांस लेने की आकांक्षा करने लगे हैं। इस दीन-हीन तथा वर्ण व्यवस्था की विषमता से पीड़ित समाज के नेता तथा हित चिन्तक परम पूज्य बाबा साहेब डा० भीमराव अम्बेडकर महोदय ने लम्बी सोच विचार के बाद निर्णय दिया है कि इन करोड़ों अछूतों तथा शूद्रों को यदि सदियों के पुराने जेलखाने से जिसे वैदिक या हिन्दू संस्कृति का नाम दे रखा है, छुटकारा हासिल

करना है और भारत में सभ्य, समुन्नत तथा समान भारतीय बन कर रहना है तो उन्हें अपने वर्तमान अभिशाप से जो हिन्दूपन के नाम से उन्हें भूत बनकर चिमटा हुआ है तथा जिसने उन्हें मानव ही नहीं रहने दिया, बहुत शीघ्र पिंड छुड़ा कर किसी ऐसी संस्कृति को अपनाना होगा जो इनमें सदियों से भरी निराशा का सत्यानाश करके दलित वर्ग में नया उत्साह, नवीन आशाएँ और नव-जीवन का संचार करने का साधन सिद्ध हो।

चिरकाल तक संस्कृतियों के तुलनात्मक अध्ययन से डा० अम्बेडकर को भगवान् बुद्ध की संस्कृति ही उत्तमतम जंची। इसी बौद्ध संस्कृति या धर्म को बाबा साहेब डा० बी० आर० अम्बेडकर जी ने स्वयं अपनाया और अपनी अनुयायी जनता को इसे अपनाने का उपदेश दिया। आपके मत में केवल यही बौद्ध संस्कृति ही अछूतों और कथित शूद्रों तथा पिछड़े वर्गों के कल्याण के लिए पथ प्रदर्शन करेगी। न केवल भारत के अछूतों तथा शूद्रों को ही इस संस्कृति को ग्रहण करने में लाभ होगा अपितु समस्त भारत का सामाजिक तथा सांस्कृतिक कल्याण, यदि किसी सन्मार्ग से हो सकने की उम्मीद बन्धती है तो वह केवल भगवान् बुद्ध के पद-चिन्हों पर चलना ही है। हिन्दू संस्कृति या धर्म केवल जात-पांतों का ही संघात है। यदि भारत के कर्णधार भारतीय संविधान में प्रतिपादित जातिविहीन तथा वर्णविहीन समाज रचना में ईमानदारी से विश्वास रखते हैं तो उन्हें भारत में वर्तमान जात-पांत, ऊंच-नीच, द्विज-अद्विज, सवर्ण-अवर्ण की प्रतिपादक संस्कृति या धर्म के स्थान पर पंचशील तथा अष्टांगिक मार्ग धर्म के प्रवर्त्तक भगवान् तथागत बुद्ध की संस्कृति को विराजमान कराना होगा। भगवान् बुद्ध की संस्कृति न केवल भारतीयों को ही एक सूत्र में बांधेगी बल्कि पृथ्वी के प्रत्येक मानव में भाई चारा पैदा करने का साधन बनेगी। यह दृढ़

विश्वास ही बाबा साहेब को भगवान् बुद्ध के चरणों में लाया और इसी विश्वास के वशीभूत होकर आपने भारत की दबी, पिसी और धर्म के नाम पर सदियों से पीड़ित जनता तथा शोषित अछूत और पिछड़े जन समुदाय को इस संस्कृति को ग्रहण करने के लिए अमर संदेश दिया।

बौद्ध संस्कृति या धर्म से भारत चिर-परिचित है। यह भारतीयों के लिए कोई नया संदेश या नवीन वस्तु नहीं है। एक समय था जब सारे भारत का राजनीतिक धर्म केवल बुद्ध धर्म ही था। भारत के जनसाधारण की सांस्कृतिक जयध्वनि "नमो भगवतो अरहतो सम्मा सम्बुद्धस्स" थी। आज भी भारत के इस किनारे से उस किनारे तक इस संस्कृति के चिन्हों, स्मारकों तथा अवशेषों की स्थान-स्थान पर मोहर अंकित है। इसी सद्धर्म के धर्मदूतों ने सारे दक्षिण एशिया में जिनकी जनसंख्या अस्सी करोड़ से कम नहीं; भगवान् तथागत बुद्ध की सौम्य संस्कृति का अमरतन शुभ संदेश दिया था और जिस संदेश को वहां की जनता अत्यन्त प्रेम, असीम श्रद्धा तथा अनुपम अनुराग से आज भी सद्यः पैदा होने वाले प्रत्येक नवजात शिशु के कानों में संचार करना पुण्य तथा सौभाग्य समझती है। ऐसा बोधि वृक्ष जिसकी शाखाओं ने करोड़ों दक्षिणी एशिया निवासियों को शीतल छाया तथा मधुर सांस्कृतिक फल प्रदान किये आज उसकी शाखाएँ उन देशों में साक्षात् बोधि वृक्ष का रूप धारण किये हुए हैं। किन्तु अत्यन्त दुख की बात है कि वह बोधि वृक्ष अपने जन्म स्थान पर सूख चुका है। उसकी हरी भरी कोंपलें तथा उसकी लचकीली शाखाएं आज सूख कर झाड़ बन चुकी हैं। दक्षिण एशिया के बौद्ध यात्री जब अपने इष्टदेव, अपने पथ प्रदर्शक तथा धर्म चक्र के प्रवर्त्तक की पुण्य भूमि में आते हैं तो दिल मसोस कर रह जाते होंगे और कहते होंगे कि "इस खाना काबा में तो कुफर

ही का निवास है।" देश-विदेश के अनुसन्धानकों की इस खोज पर कि बोधि वृक्ष भारत की भूमि से क्यों सूख गया; हिन्दू धर्म के पुरोहित-पंडों का एक ही उत्तर है कि उसकी हरियावल या जीवन शंकराचार्य के तर्क की लू से झुलस गया। वह वेदांत और ब्रह्म-बाद की आंधी का मुकावला नहीं कर सका। ऐसे लोगों के मत में वेदांत फिलोसफी ने बौद्ध फिलोसफी को मात कर दिया।

इस सम्बन्ध में जनता की जिज्ञासा को ध्यान में रखते हुए इस लघु पुस्तिका में संक्षेप रूप से उन कारणों पर प्रकाश डाला गया है जो भगवान् तथागत बुद्ध तथा उनके धर्म को उनकी जन्म-भूमि से लोप करने का सबब बने। हमारा दावा है कि बोधि वृक्ष के सूखने का कारण शंकराचार्य या किमी अन्य आचार्य के दार्शनिक तत्व नहीं थे अपितु ब्राह्मण वर्ग की आजीविका तथा बड़प्पन कायम रखने का प्रश्न या छल बल तथा षड्यन्त्र मात्र था। बौद्ध दर्शन का यद्यपि आज से अढ़ाई हजार वर्ष पूर्व प्रादुर्भाव हुआ किन्तु वह आज भी विज्ञान तथा मनोविज्ञान की तुला पर पूरा उतर रहा है।

हमारा दृढ़ विश्वास है कि जैसे-जैसे मनोवैज्ञानिक रहस्य खुलते जायेंगे भगवान् तथागत का धर्म भी वैसे ही जनप्रिय होता जायेगा। आज से हजारों बरस पूर्व जब बौद्धदर्शन तथा मनो-विज्ञान का उदय हुआ उस समय यहां आज की भाँति वैज्ञानिक प्रयोगशालायें नहीं थीं। भगवान बुद्ध द्वारा इन्द्रियों और मानसिक व्यापारों से तथा अपनी पैनी निर्मल बुद्धि के अनुमानों से ही प्रति-पादित यह मानसिक अनुसन्धान आज के वैज्ञानिक युग में भी सत्य सिद्ध हो रहे हैं।

ईश्वर, परमात्मा या ब्रह्म आदि के निरर्थकवाद के स्थान पर सदाचार की स्थापना करने का श्रेय भगवान् बुद्ध के सिवाय किसी अन्य विचारक को नहीं दिया जा सकता। व्यक्ति तथा

समाज को दु:ख की भट्ठी में जलते देखकर भगवान् बुद्ध ने मानव तथा मानवता के संतप्त हृदय पर पंच शील, अष्टांगिक मार्ग अर्थात् प्रज्ञा, करुणा, शील तथा समाधि का जो अमृतसना फाहा रखा उसकी आज पहले से भी अधिक आवश्यकता है। कितने दु:ख तथा हार्दिक वेदना का विषय है कि इतनी उत्तम आध्यात्मिक तथा सामाजिक फिलोसफी को छल बल से इस देश से निष्कासित करने का निन्दनीय कार्य किया गया और उसके लिये यह ढिंडोरा पीटा गया कि स्वामी शंकराचार्य ने शास्त्रार्थों में ब्रह्मवाद या वेदान्त के दर्शन के शस्त्रास्त्रों से बौद्धों को हरा कर हिन्दू धर्म में दीक्षित कर लिया था। इस पुस्तिका में संक्षेप रूप से इस कथन का खण्डन करके जो कारण भारत में बोधि वृक्ष को सुखाने के सबब बने उनका दिग्दर्शन कराया गया है। हमें आशा है कि इस विषय से दिलचस्पी रखने वाले पाठकों के लिये यह लघु पुस्तिका रुचिकर सिद्ध होगी। बोधि वृक्ष जिसके नीचे बैठकर शाक्य मुनि सिद्धार्थ गौतम को बोध हुआ, हिन्दू राजा पुष्यमित्र द्वारा स्थापित शशांक वंश के किसी राजा ने उखाड़ फेंका या जलाकर भस्म कर दिया था। इस पुस्तक में हमारा उस वृक्ष के सूखने या विनाश होने से तात्पर्य न होकर उस बोधि-वृक्ष के नीचे ध्यानमग्न हुये तथागत गौतम ने जिस बोध या तत्व का प्रकाश किया तथा लगातार पैंतालीस बरस तक घूम-घूमकर जिस सत्य का उपदेश दिया उस 'बौद्ध धम्म' से है। स्थूल बोधि वृक्ष ने तो एक-न-एक दिन सूखना ही था किन्तु धर्म का वृक्ष जो हमारे विचार में वास्तविक बोधि वृक्ष है उसकी शाखाएँ आज सारे दक्षिण पूर्वी एशिया के छोटे-बड़े अनेक देशों में बोधि वृक्ष बन चुकी हैं और वहाँ के करोड़ों निवासियों को बौद्ध धर्म की शीतल छाया और सुस्वादु अमृत फल दे रही है। संसार का वह धर्म जो करामातों, चमत्कारों, परमात्मा के नाम

मात्र के प्रतिनिधियों तथा संदेशवाहकों के आधार पर स्थापित न होकर केवल सदाचार तथा सात्विक और तात्विक दर्शन के आधार पर स्थापित हुआ है, उसे वेदान्तियों या ब्रह्मवाद के शंकराचार्यों ने तर्क वाणों से बींध डाला या दार्शनिक शास्त्रार्थों में पिछाड़ कर भारत भूमि से निर्मूल कर दिया, इस प्रकार के असत्य प्रचार तथा वाचालता का भाण्डा फोड़ने के लिये ही यह पुस्तक लिखी गई है। इसमें उन कारणों पर संक्षेप से प्रकाश डाला गया है जो भारत में बौद्ध धर्म की मन्दाकिनी को सुखाने के कारण बने। जो लोग आज भगवान बुद्ध तथा उनके धर्म की ओर केवल उसे वैज्ञानिक, तर्कसंगत और मानवता का उद्धारक, तथा सदाचार का प्रतीक मान कर ही आकर्षित हो रहे हैं, उन्हें यह सुनकर गहरा सदमा होता है कि उनका अभीष्ट देवाधिदेव भगवान् बुद्ध और उनका 'धर्म' सचमुच शंकराचार्य के शास्त्रार्थों से हार खा गया। इसी संदेह या भ्रान्ति को दूर करने के लिये ही इस लघु पुस्तिका को प्रस्तुत करने की आवश्यकता अनुभव हुई। इसको बड़ी स्थूलकाय पुस्तक भी बनाया जा सकता था किन्तु हमारे विचार में जन-साधारण में जो काम छोटे-छोटे ट्रैक्ट या लघु पुस्तिकायें करती हैं वह बड़ी पुस्तकों से नहीं हो सकता। बड़ी पुस्तकों में मूल्य, समय तथा विचारों के शीघ्र ग्राह्य होने की सुविधा नहीं मिलती जबकि छोटी पुस्तकें इन तीनों बातों में लाभदायक होती हैं। यदि पाठकों ने इस पुस्तक में दिलचस्पी ली या कुछ रुचि दिखाई तो हमारा प्रयास सफल हो चुका समझा जायेगा।

—सोहनलाल शास्त्री

सबसे पहले कुमारिल भट्ट और शंकराचार्य को ही लीजिए। कुमारिल भट्ट तो मीमांसक या वैदिक कर्मकांडी ब्राह्मण थे। वह हवन, यज्ञ और वेदों के अनुयाई थे जो वास्तव में उस पुराने ब्राह्मण धर्म का नया रूप था, जिसको पराजित कर के भगवान् बुद्ध और जैन धर्म के तीर्थकरों ने श्रमण संस्कृति का बीजारोपण किया था। यह कर्मकांड तो मौर्यवंश के अन्तिम राजा, महाराजा बृहद्रथ के समय तक प्रायः समाप्त-सा ही हो चुका था। भारत का जन साधारण वैदिक कर्मकांड के गढ़े से बाहर निकल चुका था। बुद्ध दर्शन के प्रभाव से सर्व साधारण का बौद्धिक स्तर इतना ऊपर उठ चुका था और उनका मानसिक स्वास्थ्य और बल इतना अधिक विकसित हो चुका था कि वे पुनः इस वैदिक कर्म-कांड को स्वीकार नहीं कर सकते थे। इसलिए इसमें तनिक भी सत्य नहीं है कि कुमारिल भट्ट ने बौद्ध धर्म को पराजित करके देश से बाहर निकाल फेंका।

जहाँ तक शंकराचार्य को बौद्ध धर्म पर विजय प्राप्त करने की बात कही जाती है तो इस सम्बन्ध में ध्यान देने की बात यह है कि शंकराचार्य ने बौद्ध धर्म के शून्यवाद के दर्शन पर विजय प्राप्त करने के लिए ब्रह्मवाद का प्रचार किया। इसने अवश्य ही किसी हद तक जनता को अपनी ओर आकर्षित किया, किन्तु सामान्यतया हिन्दुओं पर इसका गहरा प्रभाव नहीं पड़ा क्योंकि शंकराचार्य का ब्रह्मवाद तो वैदिक धर्म अर्थात् वैदिक यज्ञों के दर्शन के सर्वथा विरुद्ध था और न वैष्णव मतावलम्बियों को ही यह स्वीकार था क्योंकि वह तो मानते थे कि भगवान् की भक्ति में ही मुक्ति है जब कि शंकराचार्य का वेदान्त या ब्रह्मवाद केवल ज्ञान को ही मुक्ति का मार्ग मानता था। शंकराचार्य तो जीव, ब्रह्म, आत्मा और परमात्मा को एक ही मानते थे और उनकी दृष्टि में तो ब्रह्मांड या सारा जगत् ही ब्रह्म है। हां! लौकिक

व्यवहार को बनाये रखने के लिये जहां शंकराचार्य संसार की प्रत्येक वस्तु को माया मानते हैं वहां वह चातुर्वर्ण व्यवस्था अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य या शूद्र के वर्गीकरण का होना भी आवश्यक समझते है, और चारो वर्णों की पारस्परिक विभिन्नता का भी उपदेश देते हैं, क्योंकि शंकराचार्य की दृष्टि में लौकिक व्यवहार के लिए इनका होना आवश्यक है। शंकराचार्य की यह दुरंगी नीति बड़ी विचित्र जान पड़ती है। इस हास्यास्पद नीति को न तो बौद्ध स्वीकार कर सकते थे और न ही वैदिक धर्म के कर्म-कांडी ब्राह्मण। शंकराचार्य से सनातनी हिन्दू और वैदिक कर्म-कांडी या वेदों को स्वतः प्रमाण मानने वाले वैदिक धर्मावलम्बी इतने रुष्ट थे कि उन्होंने शंकराचार्य को "प्रच्छन बौद्ध" होने का दोषी ठहराया है।

हैरानगी तो इस बात पर आती है कि शंकराचार्य ने जिस ब्रह्मवाद का प्रचार किया वह भी प्रसिद्ध बौद्ध दार्शनिक नागार्जन की जूठन थी। शंकराचार्य ने उस ब्रह्मवाद को जाली और नकली ट्रेडमार्क लगा कर उसी को स्वयं अपना आविष्कार किया हुआ दर्शन बताया और उसी का प्रचार करते रहे। इस प्रकार के अनर्गल दर्शन को जिसमें सारा संसार ही ब्रह्म है और ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है तथा साथ ही साथ भंगी, चमार आदि शूद्रों का स्थान निम्नतम है, उन को वेद पढ़ने का अधिकार नहीं है, उनका स्पर्श भी वर्जित है अर्थात् वे शंकर के ब्रह्म द्वारा नहीं किन्तु किसी अन्य शक्ति के द्वारा बनाए हुए हैं, इसको बुद्धिमान स्वीकार कर नहीं सकता था? इसलिए यह कहना कि शंकराचार्य ने अपने दर्शन से बौद्ध धर्म को परास्त कर दिया सर्वथा असत्य और भ्रामक है। नागार्जुन के दर्शन ज्ञानवाद या शून्यवाद के आधार पर आडम्बर रचने वाला, हिन्दुओं के सामने विजय का भ्रम देने वाला शंकराचार्य दर्शन के क्षेत्र में बुद्ध धर्म को परास्त करने

वाला कदापि नहीं माना जा सकता। शंकराचार्य को भारत से बुद्ध धर्म समाप्त करने का यश देने वाले मिथ्याभाषियों के सम्राट् प्रतीत होते हैं।

बौद्ध दार्शनिकों की नकल करने वाले शंकराचार्य को बौद्ध दर्शन पर विजय पाने वाला कैसे माना जा सकता है? इन बेचारे सनातनियों को क्या पता कि शंकराचार्य ने स्वयं वैदिक मत के साथ ही अन्याय किया है और अपने तर्कों से वेदों में प्रतिपादित कर्मकांड को निन्दनीय अविद्या माना है।

आज शंकराचार्य के जिस संकरवाद का एवं बौद्ध दर्शन की नकल का वेदान्ती हिन्दू ढिंढोरा पीट रहे हैं और उसे भारत से बुद्ध धर्म को निष्कासित करने का यशो भागी बना रहे हैं वह वैदिक धर्म के कर्म काण्डों, यज्ञों और द्वैतवाद के प्रतिकूल है।

इतिहासकारों का यह भी अनुमान है कि भिक्खुओं में और मठों में निवास करने वाले स्थविरों में जो विलासिता और आलस्य आ गया था उसके कारण बौद्ध मत का पतन हुआ। यह कथन न तो सर्वथा सत्य है और न ही सर्वथा असत्य। इसमें कोई सन्देह नहीं कि उत्थान के शिखर पर पहुँचने वाले को पतन का गर्त भी देखना पड़ता है। बौद्ध साधुओं में भी तान्त्रिक प्रवृत्तियों के कारण विलासप्रियता आ चुकी थी। किन्तु हिन्दुओं में तो आज भी कृष्ण भगवान की रासलीलाएँ होती हैं। गोपियों के साथ उनके व्यवहार का भागवत पुराण आदि में सविस्तार गर्हित वर्णन है। हिन्दू मंदिरों और मठों में फैली हुई विलासप्रियता के पर्याप्त प्रमाण मिलते हैं। तीर्थ स्थानों के पंडों और पुरोहितों के व्यभिचार के परदे किस से छुपे हैं। इन सभी बातों के होते हुए भी सनातन धर्म का गुणगान करने वाले भक्त और अनुयाइयों का तनिक भी अभाव नहीं है वरन् वे फल-फूल रहे हैं। ऐसे पंडों पुरोहितों की हरकतों का अच्छी तरह से ज्ञान हो जाने के बाद भी हजारों

लाखों सनातनी हिन्दू बार-बार उन्हीं तीर्थ स्थानों की यात्रा करने के लिए दौड़-दौड़ कर जाते हैं जहां पर कि उनके मंडलाधीशों, साधुओं और पंडों के अभद्र आचरण उन्हें अपनी आँखों से देखने को मिलते हैं। इतिहास में ऐसा कोई ठोस प्रमाण नहीं मिलता जिससे यह सिद्ध हो कि भगवान् बुद्ध के भिक्षुओं और भिक्षुणियों में व्यभिचार इतना बढ़ गया था जितना कि हिन्दू धर्म के पुरोहितों, पंडों या तान्त्रिकों में आज भी विद्यमान है; जिसका कि ऊपर वर्णन किया जा चुका है। ऐसी परिस्थितियों में हम कह सकते हैं कि इतिहासकारों का यह अनुमान कि बौद्ध धर्म के पतन का एकमात्र कारण बौद्ध धर्म के संघ में फैला हुआ दुराचरण था बिल्कुल असत्य है। यदि ऐसा होता तो आज के नेकनाम हिन्दू साधुओं और महन्तों के युग में सनातन धर्म का भी कोई नाम लेने वाला न होता और सनातन धर्म भारत से समूल नष्ट हो चुका होता। इसके विपरीत कुछ सम्प्रदायों के तो धार्मिक सिद्धाँत ही ऐसे हैं जिनके अनुसार ऐसे व्यभिचार और दुराचार की शिक्षा दी जाती है और फिर भी उनका नाश नहीं हो रहा है।

जहाँ तक मुसलमान आक्रमणकारियों और शासकों का संबंध है यह निश्चित ही है कि उन्होंने बौद्ध धर्म का अधिक से अधिक विनाश किया। बख्तियार खिलजी ने बौद्ध धर्म के जगत् प्रसिद्ध विद्यापीठ नालन्दा को जलाकर भस्म कर दिया। वहां इतनी अधिक संख्या में पुस्तकों का संग्रह था कि वे चालीस दिन तक जलती रहीं और उनकी आग से आक्रमणकारियों के सिपाही हुक्के की चिलमें भरते रहे। हजारों भिक्षु विद्वानों का कत्लेआम किया गया। यह सब ऐतिहासिक तथ्य है।

मुसलमान आक्रान्ता बौद्ध भिक्षुओं को उनके पीले वस्त्रों के कारण पहचान लेते थे और यह कह कर कि यह मूर्तिपूजक और काफिर है उनका वध कर देते या उन्हें जबरन मुसलमान बनाकर

पुण्य अर्जित करते थे। अफगान और तुर्क आक्रमणकारियों ने अफगानिस्तान से लेकर मध्यभारत तक बौद्ध भिक्षुओं का बध किया और उन्हें बल पूर्वक मुसलमान बनाया इसमें अत्युक्ति नहीं है।

किन्तु हम यह नहीं स्वीकार कर सकते कि भारत से बुद्ध धर्म का सत्यानाश करने का कार्य एक मात्र मुसलमान आक्रमण-कारियों ने ही किया है। मुसलमान आक्रमणकारियों ने तो हिन्दू धर्म के अनुयाइयों पर भी बड़े-बड़े अत्याचार किये किन्तु वे अब भी करोड़ों की संख्या में विद्यमान हैं। बौद्धमत तो एक सामाजिक शक्ति होने के साथ-साथ दर्शन भी है जिसकी जड़ें भारत में मुसलमान आक्रमणकारियों के आगमन से डेढ़ हजार वर्ष पूर्व हो जम चुकी थीं। इसको एक दम भारत से निकाल फेंकना मुसलमान आक्रान्ताओं की सामर्थ्य से बाहर की बात थी। ऐसी परिस्थिति में हमारी समझ में नहीं आता कि भारत से बुद्ध धर्म को निकालने का सारा कलंक मुसलमान आक्रमणकारियों पर ही कैसे थोपा जा सकता है? इन परिस्थितियों से हमारा सन्देह और भी दृढ़ हो जाता है कि आखिर इस भूमि में जहाँ बुद्ध संस्कृति और कला का चप्पे-चप्पे पर ठप्पा लगा हुआ था। जहां सैंकड़ों वर्षों तक मौर्यवंश के महाराज अशोक तथा उनके उत्तराधिकारियों के एवं कुशन वंश के राजा कनिष्क और महाराजा हर्ष के घर घर बुद्ध देवता बन कर रहते रहे, जहां बौद्ध विश्वविद्यालय स्थापित किये गये और फलते फूलते रहे; उस धरती से बुद्ध धर्म आखिर एक दम से जो लुप्त हो गया तो वह कैसे? यह एक आश्चर्यजनक और गहन प्रश्न है।

यह मनना कि भारत भूमि से भगवान् बुद्ध के धर्म का सम्पूर्णतः विल्कुल लुप्त हो जाना हमारे लिए आश्चर्य, दुःख और दुर्भाग्य का विषय है, अनुचित न होगा। इस पुस्तक के पूर्व भाग

में मैंने उन अनुमानों और कथनों में से कुछेक को जो कि बुद्ध धर्म के पतन के सम्बन्ध में प्रचलित हैं असत्य ठहराया है और कुछ ऐसे हैं जिनको अंशतः सत्य माना है। हमारा निश्चित मत है कि भारत से बुद्ध धर्म को निकाल फेंकने का षड्यन्त्र सबसे पहले ब्राह्मणवाद ने किया। ब्राह्मणवाद इस षड्यन्त्र मे सफल तो अवश्य हुआ किन्तु इस सफलता के लिए वह बधाई का पात्र नहीं ठहराया जा सकता। वरन् एक घृणित अपराध का दोषी है।

ब्राह्मणवाद का बुद्ध धर्म के साथ जो संघर्ष था वह स्वार्थ पर आधारित था। अपने स्वार्थों को ध्यान मे रखते हुए ब्राह्मणों ने भारत भूमि से उस बोधि वृक्ष को काट कर फेंक दिया जो करोड़ों भारतवासियों को सामाजिक तथा आध्यात्मिक छाया देता था और जिसका फल इस देश के लिए अमृत से भी अधिक मधुर तथा मूल्यवान् था। इस पुस्तक में यह भलीभांति दर्शाया जा चुका है कि वर्ण व्यवस्था के अनुसार यह बात मानी गई है कि ब्राह्मण ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न हुआ है और उसका काम वेद पठन-पाठन, यज्ञ करना-काराना और यजमानों से दान-दक्षिणा प्राप्त करना है। वैदिक युग से लेकर महाराजा अशोक तक ब्राह्मणों का व्यवसाय भली प्रकार चलता तथा फलता फूलता रहा। वे वेद मन्त्रों, ब्राह्मण ग्रन्थों और गृह सूत्रों को कठस्थ कर लेते थे और प्रति दिन किसी न किसी यजमान के घर हवन, यज्ञ, यज्ञयागादि कराकर इच्छानुसार दक्षिणा प्राप्त किया करते थे। भारत में ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों को धर्म के गोरखधधे में फसाकर जीविकोपार्जन करता था। उसने सर्वसाधारण पर धर्म का इतना आतक जमा रखा था कि यजमानों के लिए वह कानून से भी अधिक शक्तिशाली था। वेदों में अनेक प्रकार के यज्ञ थे। यदि किसी यजमान को पुत्र की प्राप्ति न होनी हो तो ब्राह्मण पुरोहित द्वारा पुत्रेष्टि यज्ञ कराकर उसे पुत्र की प्राप्ति

की गारंटी दी जाती थी। शत्रुओं के नाश करने, साँपों का विष उतारने, वर्षा कराने, अतिवृष्टि को रोकने और ओलों का उत्पात रोकने आदि के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के वेद मन्त्र थे। वे राजाओं को चक्रवर्ती बनाने के लिए उनसे अश्वमेध यज्ञ, गोमेध यज्ञ यहाँ तक कि नरमेध यज्ञ तक करवाते थे। भारत का ब्राह्मण पुरोहित गोमेध यज्ञ में गायों की, अश्वमेध यज्ञ में घोड़ों की और नरमेध यज्ञ में मनुष्यों तक की बलि अपने पवित्र हाथों से चढ़ाता रहा है। ब्राह्मण न तो तलवार चला सकता था क्योंकि यह क्षत्री का काम था न हल चलाने का, न पशु पालने का काम कर सकता था, क्योंकि यह वैश्य का धर्म था। सेवा का काम करना तो वह कदापि किसी हालत में भी स्वीकार नहीं कर सकता था क्योंकि उसके मत में यह नीच शूद्र का धंधा था। ऐसी दशा में ब्राह्मण के लिए जीवन यापन की समस्या का एकमात्र यही साधन था कि वह यज्ञादि कर्म काण्ड कराये और गुलछर्रे उड़ाता रहे। आजकल आर्य-समाजियों ने तो केवल सोलह संस्कार ही बताये हैं किन्तु वैदिक युग में तो शिशु के गर्भ से लेकर उसको मृत्यु तक ब्राह्मण के लिए कम-से-कम चौंसठ बार अपने यजमान के घर पर आना आवश्यक था। अर्थात् वही चौंसठ संस्कार कम होते-होते अब केवल सोलह रह गये है। यदि ब्राह्मण को यजमान के घर से एक संस्कार के लिए एक बार एक रुपया मिलता होगा तो उसे प्रत्येक यजमान से उसके जीवन के अन्त तक चौंसठ रुपया या उसके समतुल्य अन्नादि अवश्य मिलता रहा होगा। यज्ञादि और कर्म-कांड के इस मकड़ी के जैसे जाले में यजमानों को ब्राह्मणों ने ऐसी चतुराई से फसाया था कि कोई भी सवर्ण हिन्दू उससे मुक्त होने की चेष्टा करने पर भी इस जाले से बाहर नहीं निकल सकता था। भारत का इतिहास इस बात का साक्षी है कि ब्राह्मणों ने हजारो वर्षों तक हिन्दुओं के मस्तिष्क को एक प्रकार के

फौलादी फ्रेम में जकड़े रखा जिसने उसे चीन की नारियों के पैरों के समान जो लोहे के जूतों में कसकर रखे जाते थे, कभी विकसित होने या फलने फूलने का अवसर ही नहीं दिया। यजमान को यज्ञ व्रतों के द्वारा इस संसार में कल्याण तथा उसके पश्चात् स्वर्गधाम दिलवाने का ठेका ब्राह्मण के हाथ में था। ऐसी दशा में ब्राह्मण के बनाये हुए धर्म कुचक्कर से कौनसा व्यक्ति छुटकारा प्राप्त कर सकता था।

श्रमण संस्कृति के प्रचारक जैन मुनियों और बुद्ध धर्म के प्रवर्तक भगवान् बुद्ध ने वेदों और उसमें बताए गए यज्ञों का उग्र रूप से खंडन किया। हजारों लाखों निरपराध पशुओं को वैदिक यूप (पशुबलि के खम्भे) से मुक्त कराया। इतना सब होने पर भी ब्राह्मण पुरोहित भगवान् बुद्ध के समय से लेकर महाराजा अशोक के समय तक अपने कर्मकांड तथा यज्ञादि बौद्ध गृहस्थों तक के घरों पर जाकर कराते रहे और उनसे दान दक्षिणा ऐंठते रहे। किन्तु महाराज अशोक ने ब्राह्मणों से स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि उनका कुल देवता न ब्रह्मा है, न विष्णु, न इन्द्र, न वरुण और न कोई अन्य देवी देवता। वे किसी भी ब्राह्मण से अपने इस प्रकार के कुल देवता का पूजन नहीं करायेंगे। महाराज अशोक ने ब्राह्मणों को डंके की चोट से कह दिया कि उनका कुल देवता भगवान् तथागत बुद्ध हैं, उनके अतिरिक्त वे किसी अन्य देवी देवता को अपना देवता नहीं मानते हैं। अत: उनके घर में किसी भी ब्राह्मण पुरोहित की तथा वैदिक या हिन्दू देवता की पूजा की आवश्यकता नहीं है।

ब्राह्मण की आजीविका को सबसे भारी आघात पहुँचानेवाला यही सबसे प्रथम वज्रपात था। बौद्ध सम्राट् की इस चुनौती को कर्मकांड कराने वाले वैदिक ब्राह्मणों ने स्वीकार तो किया किन्तु उनके पांव तले की धरती सरक गई। उसे अपनी तथा अपनी

आने वाली सन्तानों की मनचाही जीविका से वंचित हो जाने का सबसे अधिक दुख हुआ। वह यह विचारने पर विवश हो गया कि ब्राह्मण विरोधी मौर्य वंश के इन बुद्ध धर्म के अनुयाई राजाओं को आखिर कब तक सहन किया जा सकता है। ऐसा विचार कर ब्राह्मण सदा ही ऐसे अवसर की टोह में रहने लगा जिसमें कि मौर्य वंश को जो कि भगवान् बुद्ध का अद्वितीय अनुयायी, उपासक, सहायक तथा प्रचारक था नष्ट करके भारत में फिर से ब्राह्मणों की कठपुतली शासन स्थापित किया जाये, फिर यज्ञादि का जाल बिछाया जाये। पुनः यजमानों से मुँह माँगी दक्षिणा प्राप्त की जाये। ब्राह्मणों को बुद्ध धर्म के भिक्षुओं से उत्तम प्रमाणित किया जाये। एक बार फिर शूद्रों को जो कि भारत के सामाजिक और धार्मिक जीवन में बुद्ध धर्म की बदौलत अन्य वर्णों के साथ समानता का पद प्राप्त कर चुके थे, द्विजों अर्थात् सवर्ण हिन्दुओं के पैरों के नीचे रौंदवाया जाये तथा स्त्री जाति को पैर की जूती बनाकर रखा जाये। मौर्य वंश के महाराजा वृहद्रथ का उसके ब्राह्मण सेनापति पुष्यमित्र ने ब्राह्मणों के साथ षड्यन्त्र करके बध कर दिया तथा मौर्य शासन अर्थात् बुद्ध धर्म की रक्षा करने वाले शासन को समाप्त करके शुंगवंश का बीजारोपण किया। ब्राह्मणों द्वारा अश्वमेध यज्ञ कराया गया और एक बार फिर हिन्दू शास्त्रों के वही आदेश, जो मौर्य राजाओं के समय में निरर्थक तथा अव्यवहार्य घोषित किये जा चुके थे, जारी कर दिये गये। गर्दन को अपना खोपड़ी में छिपाकर संकट का समय बिताने वाले कछुए के समान समय को अनुकूल पाकर ब्राह्मणवाद एक बार फिर विषैले नाग के समान फन फैलाकर खड़ा हो गया और शुंगवश (शशक) के राजाओं ने, जो कि ब्राह्मण थे, बौद्धों पर अनेक अत्याचार किये। बौद्ध भिक्षुओं का वध कराया गया। उनके विहारों को जलाकर राख कर दिया गया। गया

से बोधिवृक्ष जला दिया गया। यह सब कुछ करने का कारण केवल यही था कि बौद्ध धर्म सामाजिक समानतावाद का प्रचारक था। वह मानता था कि सभी मनुष्य समान हैं। वह इसका प्रतिवाद करता था कि ब्राह्मण सब वर्णो का शिरोमणि है। उस का कहना था कि ब्राह्मणों का पैतृक धंधा यज्ञादि कराना जो ब्राह्मण जाति की जीविका का एकमात्र साधन था केवल एक पाखंड है। और वेद-शास्त्रों को तर्क की कसौटी पर परख कर वह प्रमाणित कर चुका था कि ब्राह्मणवाद का पोषण करने वाले यह वेदशास्त्र बाजार में चलने वाले खोटे सिक्के के समान हैं। ब्राह्मणों ने केवल डाह और स्वार्थपरता के कारण ही और अपनी सर्वश्रेष्ठता स्थापित करने के लिए ही भारत से बौद्ध राज्य को समाप्त कर दिया, और उन शास्त्रों, स्मृतियों और पुराणों के फिर से ऐसे संस्करण तैयार कराये जिनकी उपमा यदि दोबार खींची गई सुरा से दी जाये तो अनुचित न होगा।

वैदिक काल की वर्ण व्यवस्था इतनी भयानक और क्रूर नहीं थी जितनी कि मौर्य राजाओं की समाप्ति के पश्चात् मनुस्मृति आदि अन्य शास्त्रों के द्वारा पुनः स्थापित की गई वर्ण व्यवस्था जो शूद्रों के प्रति निर्दयतापूर्ण थी।

यद्यपि मौर्य वंश की समाप्ति के पश्चात् भी कुशान वंश के विदेशी आक्रमणकारियों में से महाराजा कनिष्क को बुद्ध धर्म ने आकर्षित कर लिया था और भगवान तथागत के धर्म ने पश्चिमी भारत में मथुरा तक एक बार फिर अपनी धाक जमा ली थी किन्तु ब्राह्मण यह बात अच्छी तरह समझ चुका था कि धर्म का प्रचार राजाओं के आश्रय पर ही होना है। इसीलिए ब्राह्मणों ने भी विदेशी आक्रमणकारियों को, जो किसी भी धर्म शास्त्र के अनुसार वर्ण व्यवस्था में सवर्ण हिन्दुओं का पद प्राप्त नहीं कर सकते थे, पौराणिक धर्म में सम्मिलित करके अग्निकुल राजपूत

या क्षत्री बना डाला। चन्द्रगुप्त द्वितीय और स्कन्दगुप्त आदि गुप्त वंशीय महाराजे ब्राह्मणों के ऐसे ही चमत्कारों के परिणाम थे। ब्राह्मण पुरोहितों और कवियों ने इन महाराजाओं की भूरि-भूरि प्रशंसा की और उन्हे हिन्दू धर्म के नये देवता महादेव का उपासक बनाकर पौराणिक धर्म को बहुत प्रोत्साहन दिया और यहाँ तक चेष्टा की कि बुद्ध धर्म का नाम तक न रहने पावे। इसी अभिप्राय से विक्रमादित्य द्वितीय का संवत् चलाया। इस काल में यद्यपि बुद्ध धर्म का पतन आरम्भ हो चुका था तथापि बुद्ध धर्म के सिद्धान्तों ने सर्वसामान्य उदार हिन्दुओं के हृदय और मस्तिष्क में पर्याप्त स्थान प्राप्त कर लिया था। जनता की मानसिक शक्ति तर्क तुला पर आधारित हो चुकी थी। अतः इस काल की जनता अश्वमेध, गोमेध और नरमेध जैसे निन्दनीय पशुघाती यज्ञों को घृणा की दृष्टि से देखती थी। जनता यह भी सहन करने को तैयार नही थी कि ब्राह्मण-पुरोहित बौद्ध भिक्षुओं के समान त्यागी और तपस्वी न होते हुये मोज उड़ाएँ। धर्म का अंग बताकर सोम रस (हलकी मादक सुरा) का पान करे तथा श्राद्धों अथवा अन्य यज्ञों के अवसरों पर भरपेट मांस भक्षण करें; यजमानों की स्त्रियों से हंसी-मजाक करे और वह भी धार्मिक आचरण के रूप में।

ब्राह्मणों ने समय को पहचान कर यज्ञों के अवसरों पर गोवध तथा अन्य पशुओं का वध करना वर्जित घोषित कर दिया। पुरोहितों ने मदिरापान तथा माँस भक्षण केवल इस लिए त्याग दिया ताकि जनता की दृष्टि में वह भी बौद्ध भिक्षुओं जैसा आदर सम्मान प्राप्त कर सकें। यहाँ तक कि ब्राह्मण पुरोहित नितांत शाकाहारी बन गया और पुराणों में संस्कृत के ऐसे श्लोक बनाकर सम्मिलित कर दिये जिनसे यह प्रमाणित हो सके कि हिन्दू धर्म शास्त्रों ने ही मदिरापान तथा माँस भक्षण पर प्रतिबन्ध

लगाये हों। यद्यपि वास्तविकता यह है कि वैदिक काल तथा वैदिक सभ्यता मे कोई यज्ञ ही ऐसा नहीं था जो माँस के मधुपर्क और मदिरा (सोमरस) के बिना पूरा हो सके।

कहां तक वर्णन किया जाये हजारों उदाहरणों तथा ऐतिहासिक प्रमाणों से यह सिद्ध किया जा सकता है कि भारत से बुद्ध धर्म या बोधि वृक्ष का मूलविच्छेद करने का निन्दनीय कार्य ब्राह्मणवाद ने किया है। भविष्य मे जब बौद्ध पंडित और धर्मान्धना रहित अनुसन्धानक इस विषय पर विचार करेंगे तो वह भी देखेंगे कि इस षड्यन्त्र का सबसे महान् दोषी ब्राह्मणवाद ही है। यद्यपि इस देश से बुद्ध धर्म का नाम तक मिटा दिया गया तथापि बुद्ध सस्कृति, कला, दर्शन और सदाचार इस देश पर अपना सिक्का जमाए हुए थे। कन्या कुमारी से लेकर श्रीनगर तक की इंच-इंच धरती पर बुद्ध सभ्यता और संस्कृति के चिन्ह अपनी पूरी चमक-दमक तथा आभा के साथ विद्यमान थे। इस समय का ब्राह्मण पुरोहित वैदिक काल के पुरोहित से बहुत बदल चुका था। वैदिक काल के देवी-देवता, यज्ञ और आचार-विचार इस काल के हिन्दू के घर में उपस्थित नहीं थे यद्यपि ब्राह्मणी श्रेष्ठता वैसे ही चली आ रही थी। इस समय का ब्राह्मण शाकाहारी बन चुका है। यद्यपि वैदिक काल का ब्राह्मण मांस भक्षण एवं सोमरस के बिना अपने धार्मिक कृत्यों का ही पालन नहीं कर सकता था। प्रश्न उठ सकता है कि इस परिवर्तन का कारण क्या है ? तो इसका बहुत ही सरल उत्तर है कि यह परिवर्तन बुद्ध धर्म और दर्शन के प्रभावस्वरूप में हुआ है। यह दूसरी बात है कि ब्राह्मण इस बात को स्वीकार करें या न करे। यद्यपि गुप्त वंश के महाराजाओं तथा राजपूत राजाओं के साथ गुप्त षड्यन्त्र करके उन्हें पाशुपत शाक्त तथा महादेव के धर्म का चोगा पहना कर बुद्ध धर्म का शत्रु तथा पौराणिक हिन्दू धर्म का

पोषक तो बना लिया गया था तथापि मुसलमान आक्रमण-कारियों के समय तक भारत में बुद्ध धर्म किसी-न-किसी रूप में विद्यमान रहा। नालन्दा का विश्वविद्यालय तो बख्तियार खिल्जी के समय तक स्थापित रहा। तक्षशिला विश्वविद्यालय का अवश्य ही नाम निशान मिट चुका था, किन्तु पाल-वंशीय बंगाल—विहार के राजा मुसलमान आक्रमणकारियों तक बने रहे।

बुद्ध दर्शन का प्रभाव तो ग्यारहवीं शताब्दी तक निरन्तर बना रहा। नालन्दा विश्वविद्यालय का कुलपति धम्मकीर्ति का समय तो ग्यारहवीं शताब्दी ही माना गया है। आचार्य धम्मकीर्ति के तर्क तीरों के सामने किसी हिन्दू या वैदिक दार्शनिक को ठहरने का साहस भी नहीं हुआ।

यद्यपि ऐसी कितनी ही किंवदन्तियाँ प्रसिद्ध हैं कि बुद्ध धर्म को भारत से मिटाने का कार्य शंकराचार्य ने अपने दार्शनिक प्रभाव से किया तथापि मैंने अपनी इस संक्षिप्त पुस्तक में यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि भारत भूमि से बुद्ध धर्म का मूलोच्छेद करने का सबसे महान्, सफल और छलपूर्ण षड्यन्त्र रचने का अपवित्र कार्य वैदिक ब्राह्मणवाद ने किया जिसमें शंकराचार्य भी शामिल थे और वह भी केवल इसलिए ताकि ब्राह्मणों का सामाजिक तथा धार्मिक साम्राज्यवाद निरन्तर बना रहे, फिर चाहे शेष समाज नरक के गर्त में ही क्यों न चला जाये और सचमुच बाकी समाज अवनति का शिकार हो गया।

इस पुस्तक में यह बतलाया गया है कि भारत से बुद्ध धर्म के उन्मूलन में प्रथम षड्यन्त्र ब्राह्मणवाद का है। इसे ब्राह्मणों का षड्यन्त्र न कह कर ब्राह्मणवाद का षड्यंत्र इसलिए कहा गया है कि कितने ही ब्राह्मण विद्वान ऐसे हुए हैं जिन्होंने ब्राह्मणी धर्म को छोड़कर भगवान बद्ध का धर्म स्वीकार किया और तन मन से

उसका प्रचार किया। यदि यह कहा जाय कि भगवान बुद्ध के शिष्यों में सत्तर प्रतिशत ब्राह्मणपुत्र थे तो अतिशयोक्ति न होगी। तथापि यह भी सत्य है कि भारत भूमि से बोधि वृक्ष का उन्मूलन करने वाली ब्राह्मणी धर्म की ही पैनी कुल्हाड़ी थी जिसका उपयोग केवल इसलिए किया गया कि ब्राह्मणों में स्वार्थपरता, डाह जागृत हो गया था और उनकी मनोवृत्ति बहुत संकुचित हो गई थी। फिर भी यह कहना पड़ेगा कि बुद्ध धर्म के पतन का कारण केवल मात्र और सम्पूर्ण रूप से ब्राह्मणवाद ही नहीं था तथापि उसे बुद्ध धर्म के प्रथम और प्रबल शत्रु की उपाधि तो अवश्य दी जासकती है।

इसके अतिरिक्त और भी ऐसे कारण हैं जो भारत से बुद्ध धर्म का लोप करने में सहायक सिद्ध हुए। मेरे विचार से बुद्ध धर्म की वास्तविक शिक्षा का प्रचारक या उपदेशक 'थेरवाद' या 'हीनवाद' ही है। भगवान् बुद्ध से लेकर महाराजा अशोक, गद्दीधारी मौर्य राजा बृहद्रथ तक थेरवाद या हीनयान का बोल-बाला रहा। उस समय तक हिन्दू धर्म और बुद्ध धर्म की शिक्षाओं में जो मौलिक अन्तर था वह स्पष्ट रूप से जनता के सामने आता रहा। हिन्दू धर्म या वैदिक धर्म आत्मा, परमात्मा, वेद-शास्त्र, पुनर्जन्म, अवतारवाद, मूर्तिपूजा, चातुर्वर्ण तथा यज्ञादि में विश्वास रखता था और इन्हीं सिद्धान्तों का प्रचार करता था। इसके मुकाबले पर भगवान बुद्ध का थेरवाद या हीनयान आत्मा, परमात्मा, वेदशास्त्र, अवतारवाद, मूर्तिपूजा तथा यज्ञादि का कट्टर विरोधी था। वैदिक धर्म और बुद्ध धर्म का यह अन्तर प्रत्येक व्यक्ति को स्पष्ट रूप से दिखाई देता था जो ब्राह्मण जिज्ञासु बुद्ध धर्म में प्रवेश करता था वह तुरन्त अपने पुराने सिद्धांतों-संस्कारों को त्याग कर बुद्ध धर्म के उपरोक्त सिद्धाँतों का पालन करता था। किन्तु समय के परिवर्तन से

महाराजा कनिष्क के समय में बुद्ध धर्म के विद्वानों में विकट सैद्धांतिक संघर्ष उठ खड़ा हुआ और महाराजा कनिष्क के सभापतित्त में बुद्ध धर्म की धर्म संगीति में हीनयान के विरोध में बुद्ध धर्म का एक और यान या पन्थ अर्थात् महायान उत्पन्न हुआ। महायान और हीनयान के सिद्धान्तों में बहुत बड़ा अन्तर हो गया। इसमें कोई सन्देह नहीं कि महायानी विद्वान प्रचारकों ने ही बुद्ध धर्म को भारत के बाहर अनेक विदेशों में भी पहुँचाया और उसका बहुत प्रचार भी किया, किन्तु यह तो कहना हो पड़ेगा कि जिस धर्म का महायान ने भारत में तथा भारत के बाहर प्रचार किया वह वैदिक धर्म या हिन्दू धर्म के अत्यन्त निकट था। उसकी उपमा यदि कालिज पार्टी के आर्य समाज से दी जाये तो अनुचित न होगा। गुरुकुल पार्टी के आर्य समाजी कालिज पार्टी के आर्य समाज को आर्य समाजी न कह कर कल्चर्ड (सुसंस्कृत) हिन्दू समाज ही कहा करते थे जो कि वास्तव में ठीक ही था। इसी प्रकार बुद्ध धर्म का महायान भी हिन्दू धर्म के सिद्धान्तों के साथ समन्वय स्थापित करने पर उतर आया। हिन्दुओं के विष्णु भगवान् के चौबीस अवतारों के समान वह भी जातक कथाओं में भगवान् बुद्ध के बोधिसत्व अवतार मानने लगा। जिस प्रकार भगवान् विष्णु ने हिन्दू धर्म के देवताओं के शत्रुओं का नाश करने के लिए मच्छ, कच्छ, बाराह, नरसिंह इत्यादि अनेक अवतार धारण किये उसी प्रकार महायानी बौद्धों के भगवान् बुद्ध के भी बोधि सत्व अवतार होने लगे। उनमें कुछ अवतार तो पशु, पक्षी, सुअर, और कुत्ते आदि के रूप में भी बताये गये हैं। विष्णु के अवतारों का तो पापियों का संहार करके ब्राह्मणी धर्म की रक्षा करने के लिए होना बताया गया है, किन्तु बोधि सत्व के अवतार दया धर्म करुणा सिद्ध करने के लिए होते रहे। पुर्नजन्म का सिद्धान्त जो बुद्ध धर्म में

हिन्दू धर्म के सर्वथा विपरीत था। वह भी हिन्दू धर्म के अनुसार ही महायान में अपनाया गया। भगवान् बुद्ध आत्मा और परमात्मा दोनों का ही खंडन करते हैं, जब कि आत्मा ही नहीं है तो फिर पुर्नजन्म किसका होगा ? यह प्रश्न विचार करने योग्य था, किन्तु महायानी बौद्ध पंडितों ने इस जन्म में पिछले जन्मों से पापों का दंड वैसे ही दिलवाया जैसा कि आत्मा को नित्य मानने वाले ब्राह्मण धर्म के अनुयायी दिलाते चले आ रहे हैं। महायानियों ने बौद्ध पुराण-बौद्ध-रामायण तथा बौद्ध तन्त्र ग्रन्थ तक रच डाले जो बौद्ध धर्म में अपमिश्रण सिद्ध हुए।

भगवान् बुद्ध मूर्ति पूजा के विरुद्ध थे। उन्होंने अपने जीवन काल में कभी भी यह परामर्श नहीं दिया कि उनकी मूर्ति की पूजा की जाये। भगवान बुद्ध के परिनिर्वाण से लेकर महाराजा कनिष्क के पूर्व काल तक जो कि हीनयान धर्म के सहायक और उसके प्रचार में योग देने वाले राजा थे निरन्तर छः सौ वर्ष तक न तो भगवान् बुद्ध की मूर्ति बनाई गई और न ही किसी मंदिर में उसकी स्थापना की गई और हिन्दुओं के विष्णु, शिव, ब्रह्मा के समान उसकी पूजा ही की गई। थेरवाद में ऐसी कोई भी परम्परा नहीं थी किन्तु महायान के प्रचारकों ने हिन्दू धर्म के विष्णु, शिव और ब्रह्मा के मुकाबिले में भगवान् बुद्ध की भी मूर्ति बना कर उसकी पूजा करवानी आरम्भ कर दी। हिन्दू धर्म के मुकाबले में महायान ने भी हिन्दुओं के अनुकरण में पौराणिकों-सा साहित्य रचना आरम्भ कर दिया जिसको ब्राह्मण धर्म का प्रतिरूप या प्रतिक्रिया ही समझना चाहिए।

ऐसी दशा में जनता को बुद्ध धर्म और हिन्दू धर्म में कोई विशेष अन्तर दिखाई नहीं देता था। बुद्ध धर्म की शिक्षा तो बुद्धि, तर्क और अनुभव की कसौटी पर कसे जाने योग्य थी। किन्तु महायान की बदौलत वह भी केवल अंधी श्रद्धा, भक्ति तथा

धार्मिक पक्षपात की वस्तु बनने लगी। ऐसी दशा में कौन बुद्धिमान व्यक्ति ब्राह्मणी धर्म को छोड़कर महायानी बौद्ध धर्म स्वीकार कर सकता था। सर्वसाधारण के लिए भूतनाथ और प्रेतनाथ में विभेद करना कठिन हो गया था। साथ ही साथ इस काल में हिन्दू धर्म भी अपने अन्दर पर्याप्त परिवर्तन ला चुका था। हिन्दू धर्म ने भी बौद्धों और जैनियों की अहिंसा को वैष्णव मत के रूप में अपने धर्म का मुख्य अंग मान लिया था। ऐसी हालत में यदि बुद्ध धर्म का भारत में पतन हुआ तो कोई आश्चर्य का विषय नहीं है। उपरोक्त उदाहरण से महायान और हिन्दू धर्म की व्याख्या अभिप्रेत है। उदाहरणतः आर्य समाज और सनातन धर्म में मूलतः कोई अन्तर नहीं था। आर्यसमाजी भी वेदों और शास्त्रों को मानते हैं वह चातुर्वर्ण और आश्रमों को मान्यता देते हैं, यद्यपि उनकी व्याख्या में कुछ साधारण-सा अन्तर अवश्य है। इसी का परिणाम यह हुआ कि आर्य समाजी भी अपने अस्तित्व को हिन्दुओं से पृथक नहीं रख सके और सनातनी हिन्दुओं का ही एक अंग बन कर रह गये। परन्तु सिक्ख धर्म के अनुयायियों ने हिन्दू धर्म के साथ समझौता नहीं किया। न तो उन्होंने वेद शास्त्रों को मान्यता दी और न ही वर्ण व्यवस्था तथा हिन्दुओं की आश्रम व्यवस्था को माना। यही कारण है कि आज भी सिक्खों का अस्तित्व सर्वथा पृथक दिखाई देता है। यदि कोई व्यक्ति हिन्दू धर्म से खीझ उठता है तो वह सिक्ख धर्म स्वीकार करके हिन्दू धर्म से अपना पिंड छुड़ा लेता है। महायान और हिन्दू धर्म में वैसा ही अन्तर है जैसा कि आर्य समाज और सनातन धर्म में है। सिक्खों और हिन्दुओं सा नहीं। यही कारण है कि भारत में सामान्य हिन्दू जनता ने महायानी मत स्वीकार करने का कष्ट नहीं किया। वास्तव में पौराणिक और महायानी दोनों ही धर्मों के धार्मिक सिद्धान्त (वर्ण व्यवस्था

को छोड़कर) समान हो गये थे। दोनों ही अवतारवादी, मूर्ति-पूजक और पुनर्जन्म के मानने वाले बन चुके थे। ऐसी दशा में बुद्ध धर्म ने जो हिन्दू धर्म की तुलना में तर्क संगत और नवीन था और जिसे हिन्दू धर्म के कोष से खिराज मिलता था, अपनी विलक्षणता खो दी, इसलिये उसको हिन्दू धर्म से खिराज मिलना बन्द हो गया, या कहना चाहिये कि वह हिन्दू धर्म में ही सम-न्वित या लीन हो गया।

मेरे अनुमान से जैसा कि मैंने ऊपर बताया है बुद्ध धर्म के पतन का दूसरा कारण उसमें से महायानी शाखा का फूट निकला था। यह धर्म चीन, जापान, तिब्बत, कोरिया, मंचू-रिया इत्यादि देशों में तो फल-फूल सकता था और ऐसा हुआ भी और इसे बुद्ध धर्म की संज्ञा भी दी जा सकती थी। क्योंकि उन देशों में इस धर्म के अतिरिक्त इससे मिलता-जुलता हिन्दू धर्म जैसा कोई दूसरा धर्म विद्यमान नहीं था। उन लोगों के लिए यह एक सर्वथा नवीन दर्शन था। परन्तु भारत में अपने साथी हिन्दू धर्म के साये में महायानी बोधि वृक्ष का यह कोमल पौधा नितान्त सूखता ही चला गता।

इसके अतिरिक्त भारत में बुद्ध धर्म के पतन का तीसरा कारण यह था कि बुद्ध भिक्षुओं में आलस्य इन्द्रियलोलुपता और सुखी जीवन का चलन बढ़ गया था। राजे-महाराजों ने, हिन्दू मदिरों और मठों के समान, बौद्ध भिक्षुओं को भी जागीरे दे दी थीं। इसका परिणाम यह हुआ कि वही भिक्षु जो भगवान् बुद्ध के समय में और तत्पश्चात् लगभग छः सौ वर्षों तक चौमासा (वर्षा काल) को छोड़कर कभी भी एक स्थान पर निवास नहीं करते थे, बल्कि स्थान-स्थान पर घूमकर धर्म प्रचार करते रहते थे, अब बड़े-बड़े मठों के गद्दीधारी हो गये और सुख का जीवन व्यतीत करने लगे। उनके मस्तिष्क में एक ऐसी सनक उत्पन्न

हो गई कि पीले वस्त्र धारण करने और उस्तरे से सर मुंडवा लेने मात्र से ही परिनिर्वाण प्राप्त हो जाता है। और धर्म प्रचार के लिए इससे अधिक जोखम उठाने की उन्हें कोई आवश्यकता ही नहीं रहती।

भगवान् बुद्ध का वह भिक्षु संघ जो एक रात भर छत के नीचे निवास करना हेय और अप्रिय समझता था और घूम घूम कर भगवान् बुद्ध के धर्म का प्रचार करता था, नितान्त आलसी बन-कर राजाओं तथा धनियों की कृपा से दिये दान पर मठों और विहारों में अपना पोषण करने लगा। उसने सामान्य जनता से सम्पर्क तोड़ दिया, जिसका परिणाम यह हुआ कि जनता को आस्था दिन प्रतिदिन बुद्ध धर्म से उठती चली गई। संभावना हो सकती है, कि तान्त्रिकों तथा वज्रयान की आड़ में बुद्ध विहारों में भिक्षुओं के भिक्षुणियों के साथ अनुचित लैंगिक सम्बन्ध भी हो गये हों क्योंकि आनन्दपूर्ण और राजसी जीवन बिताने का अन्तिम परिणाम यही होता है। श्रम से ही सच्चा श्रमण बनता है श्रमण संस्कृति का आधार श्रम ही है।

भारत में बुद्ध धर्म के पतन का चौथा कारण भारत में मुसलमान आततायियों का पदार्पण भी है। मुसलमान आक्रान्ता तो वैसे ही मूर्ति पूजकों का वध करना अपना धार्मिक कर्तव्य और पुण्यार्जन का साधन समझते थे। उस पर ब्राह्मणों के षड्यन्त्र ने भी आग में घी का काम दिया होगा। यह ठीक है कि हिन्दू भी मूर्ति पूजक थे किन्तु सिर के मुंड होने और पीले वस्त्र धारण करने के कारण बौद्ध भिक्षुओं का एक अलग ही साइन बोर्ड था। इस कारण वे मुसलमान आक्रमणकारियों द्वारा सहज ही पहचाने जा सकते थे। प्रसिद्ध इतिहासकार फरिश्ता ने अपने इतिहास में स्पष्ट लिखा है कि अफगानिस्तान और सीमांत प्रदेश में तुर्क आक्रमणकारियों ने हजारों बौद्ध भिक्षुओं की गर्दनें उड़ा दीं।

जैसा कि पहले बताया जा चुका है, बख्तियार खिल्जी ने नालन्दा विश्वविद्यालय को आग लगाकर भस्म कर दिया और लगभग छोटी बड़ी दो लाख पुस्तकों को जो ताड़पत्रों, भोजपत्रों और खालों पर लिखी हुई थीं और जो गत दो हज़ार वर्षों के ज्ञान की पूँजी थीं जलाकर राख कर दिया। उसके सिपाही चालीस दिन तक उनकी अग्नि से अपने हुक्कों की चिलमें भरते रहे। लगभग छः हजार बौद्ध विद्यार्थियों तथा ज्ञान के पिपासुओं का बध कर डाला गया या उन्हें बलात् मुसलमान बना लिया गया। मुसलमान आक्रमणकारी जहां-जहाँ भी गये वहाँ उन्होंने बौद्धों को या तो मार डाला या बलात् मुसलमान बना लिया गया। अफगानिस्तान, हिरात, सीमान्त प्रदेश या पख़तून के निवासी जो आज बादशाह खान अब्दुलगफ्फारखान और खान साहबों के रूप में दिखाई पड़ते हैं, इनके पूर्वज कट्टर बौद्ध थे किन्तु तुर्कों की तलवार ने उन्हें बलात् मुसलमान बना लिया। कहा जाता है कि तुर्कों का बौद्धों से वैर का कारण चंगेजखां, हलाकु तथा कुबलेखाँ जो बौद्ध-मतानुयायी थे, से मार खाना और हार कर भागना भी था।

पतन का पाँचवाँ कारण यह था कि हिन्दू धर्म में भी काफी धार्मिक परिवर्तन हो गये थे। ब्राह्मण भी वैदिक देवी-देवताओं का पूजन बन्द करने और पशु बलि त्यागने लग गये थे। और बुद्ध धर्म तथा श्रमणसंस्कृति की शिक्षाओं का अपने धर्म में वैदिक धर्म के नाम से समावेश करने लग पड़े थे। बौद्धों और जैनियों के समान वैष्णवमत में भी अहिंसा का प्रचार हो गया था। विष्णु की भक्ति मात्र के लिए जात-पांत का विभेद जो हिन्दू धर्म की रीढ़ की हड्डी माना गया है, अनावश्यक ठहराया गया और यह कहा जाने लगा कि "जात-पांत न पूछे कोई, हरि को भजे सो हरि को होई।" जो विष्णु भक्त है वह भगवान् की दृष्टि में समान पद पाता है। तो भी भक्ति मंडल के बाहर वर्णव्यवस्था

उनके लिए उसी प्रकार बनी रही जैसी कि पहले थी। इस प्रकार के प्रचार ने भी बुद्ध धर्म के प्रचार एवं प्रसार के मार्ग में अनेक अड़चनें उपस्थित कर दीं थीं।

महाराजा हर्षवर्धन के युग के पश्चात् वैसे ही बुद्ध धर्म के पतन की गति बहुत तीव्र हो गई थी। रहा सहा जो कुछ था वह भी मुसलमान आततायियों को समर्पित हो गया। इस समय में तो बुद्ध धर्म पर मानो कष्टों का पहाड़ टूट पड़ा।

इसके पश्चात् बुद्ध धर्म के चिह्नमात्र ही शेष रह गये और प्रकाश और उष्णता का प्रतीक बुद्ध धर्म रूपी सूर्य बिलकुल ठंडा पड़ गया। धर्म-चक्र परिवर्तन बन्द हो गया और उसके खंड-खंड हो गये। भारत में बुद्ध धर्म के सिद्धांतों का थोड़ा बहुत प्रचार अपने असली रूप में न रहकर मिश्रित रूप में चौरासी सिद्धों, नाथों, योगियों और निर्गुण-सन्त सम्प्रदाय के रूप में ही जीवित रहा। जिन्हें आम जनता ने पूरा आदर दिया।

भारत में बुद्ध धर्म के पतन के जो कारण हैं जिन पर इस पुस्तिका में प्रकाश डालने का यत्न किया गया है उनका संक्षेप नीचे दिया जाता है।

१. ब्राह्मणवाद की बुद्ध धर्म के साथ ईर्ष्या और उग्र शत्रुता। ब्राह्मणवाद की शुंग वंश, गुप्त महाराजाओं तथा अन्य राजपूतों के साथ सांठ-गांठ। विदेशी आक्रमणकारियों को राजपूत आदि बनाकर शैवशाक्त धर्म में प्रवेश देना और उनके द्वारा बौद्धों का विनाश कराना।

२. बुद्ध धर्म के अन्दर से एक अन्य नवीन शाखा महायान का फूट पड़ना जिसका प्रचार ही व्यावहारिक रूप में (वर्ण-व्यवस्था के अलावा) हिन्दू धर्म की नकलमात्र या समन्वय था। महायान ने बुद्ध धर्म के मौलिक सिद्धांतों में ढीलापन लाकर ब्राह्मण या हिन्दू धर्म का अन्धा अनुकरण किया और अवतारवाद

पुनर्जन्म, स्वर्ग और नरक की मिथ्या कल्पनाओं के क्षेत्र में पुराणों की गप्पों को तो जरूर मात कर ही दिया किन्तु उसके साथ भीतर-ही-भीतर बुद्ध धर्म को वास्तविक भावना या तात्विक शिक्षा, जो बुद्धि, तर्क और अनुभव पर आधारित थी, का भी दिवाला निकाल दिया और कुछ ही समय मे बुद्ध दर्शन और धर्म को ठीक पौराणिक हिन्दू धर्म जैसा ही बना दिया।

३. बौद्ध श्रमणों और भिक्षुओं में प्रचार को प्रवृत्ति समाप्त हो गई और वह भिक्षा त्याग कर हिन्दू मठाधीशो के समान अपने धन-धान्य प्रपूर्ण मठ बनाकर गद्दीधारी बन बैठे और राजा-महाराजाओं की जागीरो के सहारे अपना जीवन व्यतीत करने लगे। सघ का जनता के साथ जो सीधा सम्पर्क था वह दिन प्रतिदिन क्षीण होता चला गया। भगवान् बुद्ध का मुख्य उद्देश्य क्य' है इसकी उनको कोई चिन्ता नहीं रही और उन्होंने "बहुजन हिताय बहुजन सुखाय भिक्खवे चरत" अर्थात्, भिक्षुओं! अधिक-से-अधिक व्यक्तियों के सुख और हित के लिए, उनमें धर्म प्रचार के लिये घूमते रहो' की सीख भुला दी। राजसी जीवन में पड़ने के बाद वे बुद्ध धर्म के प्रचार का काम ही छोड़ बैठे; किन्तु हिन्दू धर्म के पुरोहित, पंडे और सन्यासी अपने धर्म के प्रचार या ब्राह्मणवाद के प्रसार में उसी प्रकार ही जुटे रहे और अपनी स्वार्थ सिद्धि भी करते रहे जैसे कि वह वैदिक काल मे करते थे।

४. मुसलमान आततायियों ने बौद्ध मठों, मन्दिरा और बौद्ध विहारों को तहस-नहस कर दिया। बौद्ध साधुओं को मूर्तिपूजक मानकर या तो उनका बध कर दिया गया या उन्हें बलात् मुसलमान बना लिया गया और बौद्ध धर्म के जो कुछ चिह्न बचे-खुचे थे उनको भी नष्ट कर दिया। परिणाम यह हुआ कि बौद्ध धर्म के अनुयाई या तो मुसलमान बना लिये गये या कत्ल कर दिये गये। यद्यपि मुसलमान आक्रमणकारियों का युग

बौद्ध धर्म की ह्रासोन्मुख अवस्था में ही पड़ता है, तथापि उस समय भी भारत में बौद्ध धर्म की जड़ें बहुत गहरी और सबल थीं, जिनको काटने के लिए इस्लाम की तलवार को भी बहुत परिश्रम करना पड़ा होगा।

५. पाँचवां कारण हिन्दू धर्म की आन्तरिक क्रांति है। हिन्दू धर्म ने वैदिक धर्म का अपना मूल रूप छोड़ दिया। वह पशु बलि और वैदिक देवताओं के पूजन को त्याग कर अहिंसावादी बन गये। बौद्ध और जैन धर्म अर्थात् श्रमण संस्कृति के सबसे उत्तम और अहिंसा आदि सदाचार सम्बन्धी सिद्धांतों को अपने धर्म में समाविष्ट करके उन्हें अपने धर्म का अंग बताने और दिखाने लगे कि यही हिन्दू धर्म के वास्तविक सिद्धान्त हैं, किन्तु वर्ण-व्यवस्था के विषैले पौधे को बदस्तूर हरा भरा रखने के लिये कुतर्कों का खाद पानी देते रहे। हिन्दुओं द्वारा भगवान बुद्ध को विष्णु का नवम अवतार मान लिया गया। ब्राह्मण पुरोहित केवल पशु बलि को ही नहीं छोड़ बैठा बल्कि स्वयं मांसाहारी से शाकाहारी भी हो गया।

(६) धार्मिक सम्प्रदायों की पृथक् सत्ता या अस्तित्व बनाए रखने के लिये धार्मिक संस्कारों की बहुत आवश्यकता है। इस्लाम, ईसाई, हिन्दू, यहूदी, पारसी, तथा सिक्ख मजहबों के अपने निजी, धार्मिक संस्कार हैं। इन्हीं संस्कारों की बदौलत वह एक सम्प्रदाय से पृथक् दिखाई पड़ते हैं और किसी भी देखने वाले को प्रथम दृष्टि में ही परस्पर भिन्न दिखाई पड़ते हैं।

मुसलमान बच्चे के पैदा होने के पश्चात् उसके कान में "अल्लाहु अकबर" का मन्त्र फूंका जाता है। ईसाई बच्चे को पादरी बिपतस्मा देता है। हिन्दू बच्चे की जीभ पर शहद से ओ३म् लिखने के लिए कहता है। सिक्ख बच्चे को भी गुरुद्वारा का भाई अमृत चखाता है। इसी प्रकार जन्म से लेकर मरण-

पर्यन्त बल्कि उसके भी आगे तक ऐसे संस्कारों का करना अनिवार्य धार्मिक अंग ठहराया गया है। इन संस्कारों के प्रभाव और पृथकता के कारण ही प्रत्येक समाज का अस्तित्व भिन्न और स्पष्ट दिखाई पड़ता है। दुर्भाग्य से बौद्धों ने अपने धर्मानुयायी उपासकों में ऐसे पृथक् संस्कारों की न तो कोई रचना ही की दिखाई पड़ती है और नहीं बौद्ध धर्म के अगुआ संघ (भिक्षुओं) ने इस तथ्य पर विचार ही किया। इसका यह दुष्परिणाम निकला कि बौद्ध गृहस्थो के लिए अन्य धर्मो की तरह पृथक् संस्कार न होने पर उन्हें भी ब्राह्मणी हिन्दू संस्कारों का आश्रय लेना पड़ा और वह अपने संस्कारों को भिन्नता के रूप में न अपनाने के कारण जन्म से मरणपर्यन्त हिन्दू संस्कारों को ही अपनाते रहे, इसलिये अपनी सामाजिक रूपरेखा (अस्तित्व) को हिन्दुओं से पृथक् न बना सके।

क्या ही अच्छा होता यदि बौद्ध धर्मावलम्बी भी मुसलमान, ईसाइयों और अन्य धर्मानुयाइयों की भांति अपने गृहस्थ उपासकों में एक भिन्न संस्कार विधि को अपनाए होते तो आज किसी भी ब्राह्मण विद्वान् को यह कहने का साहस न होता कि बौद्ध धर्म हिन्दू वृक्ष की एक शाखामात्र है।

इस त्रुटि ने बौद्धों को हिन्दुओं से अलग सत्ता बनाए रखने में रुकावट डाली है।

संस्कारों का आधार चाहें वैज्ञानिक हो या नहीं किन्तु मानव समाज में इनका बहुत ही दृढ़ विश्वास और महत्व है।

हमारे मत में बौद्ध धर्म के लोप में यह छटा कारण भी सम्मिलित है और बहुत प्रभावकारी रहा है।

अपने सीमित ज्ञान और अल्प अध्ययन के आधार पर मैंने इस पुस्तिका में संक्षेप में यह बताने का प्रयत्न किया है कि भारत में इस भव्य और बेजोड़ धर्म के पतन का क्या कारण हुआ। मैं

इस कल्पित कथन में तनिक भी विश्वास नहीं रखता कि भारत में बोधि वृक्ष (बौद्ध धर्म) को शंकराचार्य ने अपने कथित अलौकिक दर्शन और तर्कों से समाप्त कर दिया वरन् मैं तो यह कहूँगा कि शंकराचार्य ने वेदान्त या ब्रह्मवाद का दर्शन बौद्ध दार्शनिक सर्वास्तिवादी दार्शनिकों तथा विज्ञानवादी नागार्जुन से उधार लिया या चुराया और उस पर अपना ट्रेड मार्क लगा कर भारत में बौद्धों पर विजय पाने का यशोपार्जन किया।

बौद्ध दर्शन के सिद्धान्त में न तो कुछ भी शाश्वत (सदा टिकने वाला) है और न कुछ भी उच्छिन्न (सदैव मिट जाने वाला) है। प्रत्येक वस्तु अपने कारण से उत्पन्न होती है। कार्य अपने कारण से न तो अन्य या भिन्न ही होता है और न अनन्य हो। यदि कार्य कारण से अन्य या भिन्न हो तो कारण का उच्छेद मानना पड़ता है। यदि कार्य कारण परस्पर अनन्य है अर्थात् कार्य कारण रूप ही हो तो उसे शाश्वत या नित्य मानना पड़ेगा। किन्तु कार्य कारण सम्बन्ध में दोनों बातें नहीं हैं। इसलिये न कोई वस्तु शाश्वत है और न ही किसी का उच्छेद होता है। "अशाश्वतानुच्छेदवाद" बुद्ध का मूल दार्शनिक सिद्धान्त है। यह वाद सकारणता और परिवर्तनशीलता के नियम के आधार पर सिद्ध होता है। इसी नियम को' प्रतीत्य समुत्पाद" भी कहा जाता है। इसका शब्दार्थ है समुत्पाद: उत्पत्ति अर्थात् कार्य मात्र का होना। प्रतीत्य अर्थात् कारण के होने पर ही होना। बुद्ध के पश्चात् जितने भी बौद्ध दार्शनिक हुए हैं उन्होंने "प्रतीत्य समुत्पाद: "अशाश्वतानुच्छेदवाद" के सहारे पर ही अपने दार्शनिक विचारों को खड़ा किया है। बौद्ध दर्शन में जब प्रत्येक वस्तु अशाश्वत और अनुच्छिन्न है तो 'आत्मा' भी इसका अपवाद नहीं हो सकता। इसे वे टिकाऊ सत्ता अर्थात् अनित्य पर न नष्ट होने वाले वेदान्तियों के अजर अमर कहे

जाने वाले 'आत्मा' को बौद्ध परिभाषा में क्षणिक स्वभावी 'चित्त' या 'विज्ञान' कहा गया है। यह तो हुई बौद्ध धर्म दर्शन की सर्वमान्य सामान्य रूप रेखा। इसी सिद्धान्त या वाद के पोषक तथा प्रतिपादक सर्वास्तिवादी दर्शन के सर्वव्यापी होने पर ईसवी शती १५० में दक्षिण कौशल में किसी ब्राह्मण कुल में शून्यवाद सिद्धान्त के जन्मदाता नागार्जुन का जन्म हुआ। दार्शनिक जगत में इन्होंने एक क्रान्ति उत्पन्न कर दी। नागार्जुन बौद्ध धर्म के मूल सिद्धान्त अशाश्वत अनुच्छेदवाद को उपस्थित करता है। नागार्जुन के मत में परिणाम के पीछे तथा परिवर्तन की ओट में 'नित्यता देखना' या 'अनित्यता देखना' यह दोनों पक्ष किनारे की बातें हैं इन्हें एकान्तवाद (Extreme) समझना होगा। यों नित्यता देखने का मतलब है, शाश्वत मानना और अनित्यता देखने का अभिप्राय है उच्छेदवाद मानना। उनके मत में प्रतीत्य समुत्पाद का तात्पर्य न तो नित्य एकान्तवाद को और न ही अनित्य एकान्तवाद को मानना है बल्क नित्यानित्य विनिर्मु "शून्यतावाद" को मानना है। उनके मत में शून्यवाद ही मध्यमा प्रतिपदा है।

जो कुछ भी प्रतीत हो रहा है वह स्वप्न के समान है। जैसे निद्रा भंग होने पर स्वप्न नहीं रहता वैसे मूढता (जड़ता या अविद्या) रूपी निद्रा के हटने पर यह दृश्यमान जगत भी नहीं रहता। इन्द्रजाल की माया दिखानेवाला जादूगर (जानकार) जैसे अपने द्वारा दिखाई जा रही माया को सत् या असत् कुछ भी नहीं मानता वैसे ही तत्ववेत्ता संसार को कुछ भी नहीं समझता। वह माया और मायामय पदार्थों को देखता है और जानता है कि ये सचमुच वैसा नही है जैसा यह महसूस होता है। सत् या असत् नित्य या अनित्य दृष्टि का होना ही परमार्थ सत्य है। नागार्जुन के मत में पांचों स्कन्धों (अर्थात् नाम रूप स्कन्ध,

विज्ञान स्कन्ध, वेदना-स्कन्ध, संज्ञा स्कन्ध और संस्कार स्कन्ध) की सत्ता तो अवश्यमेव है किन्तु वह निरपेक्ष नहीं है। उनकी सत्ता सापेक्ष है। वह कहते हैं कोई भी कर्म कर्त्ता के बिना नहीं हो सकता। कर्म तथा उसका करने वाले अर्थात् कारक या कर्त्ता अपनी-अपनी सिद्धि के लिए एक-दूसरे की अपेक्षा रखते है। प्रत्येक सत्ता की सिद्धि सापेक्ष है, निरपेक्ष नहीं है। इसी का नाम शून्यवाद है। शून्यवाद निरपेक्ष सत्ता की सिद्धि से इन्कार करता है। नागार्जुन के मत मे सत्ता की सापेक्ष सिद्धि मानने पर भी व्यवहार में विरोध नहीं आता क्योंकि तत्त्वचिन्तक भी व्यवहार के समय लोक प्रमाण पर ही चलता है। लोक प्रमाणक सत्य को संवृत्ति सत्य कहते है। संवृत्ति सत्य के अनुरोध से सत्ता को निरपेक्ष कहना दोष नही किन्तु परमार्थ सत्य के अनुरोध से उसकी सिद्धि सापेक्ष है। यह सापेक्षता, सकारणता और परिवर्तन का नियम ही नागार्जुन के मत से प्रतीत्य समुत्पाद है। प्रतीत्य समुत्पाद को ही उन्होने शून्यवाद का नाम दिया। "य : प्रतीत्य समुत्पादः शून्यतां तां प्रचक्षमहे" अर्थात् कार्य कारण के पारस्परिक सम्बन्ध को शून्यता कहा गया है।

अब आइये स्वामी शकराचार्य के वेदान्त या ब्रह्मवाद का परीक्षण करे और देखें कि उनके ब्रह्मवाद में और शून्यवाद में क्या सम्बन्ध है।

शंकराचार्य और उनसे पूर्व गौड पाद आदि अनेक वेदान्ताचार्यो का मत है कि "इदं खलु जगत् ब्रह्म" (आत्मन्) अर्थात् यह संसार ब्रह्म ही ब्रह्म है। जो कुछ हमें दिखाई पड़ता है यह वास्तव या तथ्य नहीं। यह तो माया है। वह सारे संसार की सत्यत्व प्रतीति अध्यास या माया के ही कारण है। जैसे कोई व्यक्ति रात्रि के अन्धकार में रस्सी को सांप समझ बैठता है या चांदनी रात में सीप की चमक में चांदी का आभास प्रतीत

करता है किन्तु दीपक के प्रकाश में रस्सी की असलीयत दिखाई पड़ती है और सांप की भ्रान्ति दूर हो जाती है। इसी प्रकार सीप को ध्यानपूर्वक देखने से उसमें चाँदी का भ्रम दूर हो जाता है। शंकर तथा वेदान्तियों के मत में नागार्जुन की भांति बाह्य जगत तो अवश्य है किन्तु वह माया के अध्यास से प्रतीत होता है; दर असल वह है नहीं। जहां नागार्जुन विज्ञान या चित्त को बाह्य सृष्टि से सापेक्षित करके जगत की प्रतीति कराता है वैसे ही शंकराचार्य भी ब्रह्म को माया के मेल से बाह्य सृष्टि की रचना करता है। नागार्जुन के मत में सब पदार्थ क्षणिक और परिवर्त्तनशील स्वभावी है। शंकर के मत में बाह्य जगत् तो केवल माया की छाया मात्र है उसमें वास्तविकता कुछ भी नहीं। नागार्जुन का विज्ञान या चेतस भी क्षणिक है। बाह्य सृष्टि भी क्षणिक तथा परिवर्तनशील है। शंकर का ब्रह्म अपरिवर्तनशील अक्षणिक तथा कूटस्थ है। जगत् की सिद्धि में दोनों के तर्क और उदाहरण या दृष्टान्त समान हैं। हैरानी की बात तो यह है कि सारे संसार को ब्रह्म ही ब्रह्म मानने वाला तथा जगत प्रपंच को केवल धोखा तथा मायाजाल बताने वाला वेदान्ताचार्य शंकर स्वामी चातुर्वर्ण की व्यवस्था को मानता है और उसे सदैव बनाये रखने के लिये कटिबद्ध है। ऐसे व्यक्ति को आचार्य, स्वामी, दार्शनिक तथा साधु न कहकर यदि उसे ब्राह्मण वर्ग का बड़प्पन कायम रखने के लिये चतुर वकील कह दे तो अत्युक्ति न होगी। शंकराचार्य का समय नागार्जुन के समय से लगभग सात सौ बरस बाद में पड़ता है। जो तर्क तथा युक्तियां बौद्धाचार्य नागार्जुन ने सात सौ बरस पहले दी थीं उन्हें ही शंकराचार्य ने तोड़ मरोड़ कर सात सौ बरस बाद में दोहरा दिया और बौद्ध दर्शन के विजेता का यश प्राप्त कर लिया। हमारे विचार में यह दर्शन न तो युक्तियुक्त है और न ही न्याय संगत बैठता है।

वेदान्त या ब्रह्मवाद जिसके प्रचार और प्रसार के लिये शंकराचार्य से पूर्व तथा उत्तरवर्ती ब्राह्मणाचार्यों ने कोई कसर बाकी नहीं रखी उसे श्रमण संस्कृति या बौद्ध मत की प्रतियोगिता में एक दृढ़ मोर्चा मानना पड़ेगा। इस मोर्चे का अन्दरूनी तात्पर्य है, वेद, स्मृति और पुराणों में प्रतिपादित चातुर्वर्ण की व्यवस्था को जीवित रखना। जीव, ब्रह्म तथा पुनर्जन्म एक ऐसा मायाजाल बनाया गया है जिसमें आज तक ब्राह्मण ने भारतीय जन समुदाय को अपना दास बना रखा है। अपना बड़प्पन कायम रखने के लिये इन तीनों हथियारों से खूब काम लिया है। अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिये सत्य का हनन करके करोड़ों निरीह जनता का गला घोंटा है। भगवान बुद्ध और उनके शिष्यों ने ब्राह्मण के इस मायाजाल को तोड़कर जन-समूह में समता, भ्रातृत्व, न्याय तथा बौद्धिक विकास का उदय किया। चातुर्वर्ण की प्रचण्ड अग्नि में तड़पते और बिलखते हुए भारतीय मानवों को ही नहीं पशुओं को भी जो ब्राह्मणी कर्मकाण्ड के हवन कुण्ड में प्रति दिन धर्म के नाम पर झुलसे जा रहे थे, शीतल छाया देने के लिये इस भूमि में बोधिवृक्ष का बीज वपन किया। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि उस वृक्ष के नीचे एक सहस्त्र वर्ष तक अनेक प्राणियों को सुख तथा शान्ति मिली। किन्तु स्वार्थ अंध ब्राह्मणवाद ने जो समता, भ्रातृत्व, न्याय तथा बुद्धिवाद का विनाशक था अपने कुतर्कों, षड्यन्त्रों और अन्याय के कुल्हाड़े से आखिर इस बोधि वृक्ष की जड़ों को काटने में सफलता प्राप्त कर ली। किन्तु अखिल जगत की मानवता का सौभाग्य ही कहना चाहिए कि यद्यपि आज वह बोधि वृक्ष (बौद्ध धर्म) भारत में सूख गया है तथापि उसकी शाखाएँ लंका, बर्मा, स्याम, कम्बोडिया, तिब्बत, चीन, कोरिया, मंगोलिया और जापानादि देशों में बोधिवृक्ष बनकर लगभग करोड़ों मनुष्यों को छाया दे रही

है और उससे भी अत्यन्त सौभाग्य का यह विषय है कि भारत में सूखे बोधिवृक्ष की जड़ें भी पुनः हरी भरी होने लग गई हैं, और जिस भारत में आज से कुछ दशक पहले एक भी बौद्ध भिक्षु नहीं दिखाई पड़ता था, वहां आज बोधिसत्व बाबा साहेब अम्बेडकर की बुद्धिमत्ता, और धम्म प्रेरणा से सैकड़ों बुद्ध भिक्षु सैकड़ों नव निर्मित बौद्ध विहारों में, बुद्ध शरणं गच्छामि धम्मं शरणं गच्छामि, संघं शरणं गच्छामि का जयघोष करते सुनाई पड़ते हैं और दिन प्रतिदिन हिन्दू धर्म को त्याग कर करोड़ों व्यक्ति भगवान बुद्ध के धर्म में दीक्षित हो चुके और दीक्षित हो रहे हैं।

